नोबेल से इतना दूर क्यों है 'भारतीय साहित्य'

वर्ष का अंत आते-आते विश्व साहित्य जगत की दृष्टि नोबेल फाउंडेशन की पुरस्कार घोषणा पर टिक जाती है और लगाए जा रहे कयासों के विपरीत हमेशा ही कोई बिल्कुल अप्रत्याशित नाम चर्चा का केंद्र बन जाता है। इस वर्ष चीनी लेखक मो यान के नाम की घोषणा के बाद भारत के साहित्यिक गलियारों में यह बहस तेज हो गई है कि 1913 में गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर को साहित्य का नोबेल मिले सौ वर्ष होने को हैं, इन सौ वर्षों में किसी अन्य भारतीय को यह पुरस्कार क्यों नहीं मिला? इस दशक में सिर्फ एक एशियाई लेखक को नोबेल पुरस्कार मिला है। चीनी उपन्यासकार मो यान को। कुल मिलाकर अब तक एशिया के खाते में कुल चार नोबेल आए हैं। दो जापानी साहित्य के खाते में, एक मो यान और एक टैगोर।

नोबेल फॉर इंडिया

भारतीय मूल के जर्मन भाषी कवि राजविंदर सिंह ने 'नोबेल फॉर इंडिया 2013' नाम से एक कैंपेन चला रखा है। उन्होंने कुछ समकालीन भारतीय लेखकों की एक सूची बनायी है जिसमें- गुरदयाल सिंह (पंजाबी), सीताकांत महापात्र (ओडिया), यू.आर. अनंतमूर्ति (कन्नड़), के. सच्चिदानंदन (मलयालम), गुल मोहम्मद शेख (गुजराती), नामदेव ढसाल (मराठी), महाश्वेता देवी (बांग्ला), सुनील गंगोपाध्याय (बांग्ला), सीतांशु यशचंद्र (गुजराती) और भालचंद्र नेमाड़े (मराठी) आदि शामिल हैं। नोबेल फाउंडेशन का ध्यान भारतीय साहित्य की ओर न जाने के कई कारण गिनाए गए हैं। अनुवाद के लिए एक स्वतंत्र संस्था का न होना ऐसे कारणों में सबसे ऊपर है। यह आरोप भी है कि साहित्य अकादेमी और नेशनल बुक ट्रस्ट जैसी हमारी राष्ट्रीय संस्थाएं अनुवाद के लिए सही तरीके से प्रयास नहीं कर रही हैं। इनकी सक्रियता ही भारतीय साहित्य को विश्व स्तर पर पहचान दिला सकती है।

नई पहलकदमियां

निजी प्रकाशकों द्वारा इस दिशा में किया गया प्रयास कुल मिलाकर 10 से 15 प्रतिशत तक ही सीमित है। इनके प्रयास की रफ्तार धीमी है। आज विश्वस्तर के अंग्रेजी अनुवाद की आवश्यकता है। भारत में इतनी भाषाएं हैं कि यदि प्रत्येक से दस-दस प्रतिनिधि रचनाकारों के साहित्य का अनुवाद करने की ठानी जाए, तो भी यह खासा मुश्किल काम लगता है। यह किसी एक संस्थान द्वारा संभव नहीं है। जरूरी है कि कई संस्थाएं इस दिशा में अग्रसर हों। अच्छा है कि इस कार्य के लिए नेशनल बुक ट्रस्ट, साहित्य अकादेमी और केंद्रीय हिंदी संस्थान जैसी संस्थाएं आगे आ रही हैं। इन्होंने समस्त भाषा साहित्य से कम से कम सौ क्लासिक्स के अनुवाद का बीड़ा उठाया है। कहा जाता है कि नोबेल के ज्यूरी सदस्य भारतीय भाषाओं के बारे में कुछ भी नहीं जानते, जिस कारण हम साहित्य

हाल में दिवंगत बांग्ला के सुप्रसिद्ध लेखक सुनील गंगोपाध्याय के अनुसार, 'भारतीय भाषाओं में तमाम ऐसे लेखक मौजूद हैं जिनकी रचनाएं किसी भी दृष्टि से नोबेल विजेताओं से कम नहीं हैं। लेकिन अफसोस इस बात का है कि नोबेल हासिल करने के लिए विश्व की राजनीति का हिस्सा होना बेहद जरुरी है।

का नोबेल पाने में पिछड़ जाते हैं।

हम जिस अनुवाद को नोबेल पुरस्कार न मिलने के लिए जिम्मेदार मान रहे हैं, उसकी भी एक सीमा है। यह आवश्यक नहीं है कि अब तक विश्व के जिन भाषाओं के साहित्य को नोबेल मिला है उनका अनुवाद बहुत ही उत्कृष्ट हुआ हो। आज हिंदी बोलने-समझने वालों की संख्या करोड़ों है और यह स्पेनिश, मंडेरिन के बाद तीसरे स्थान पर है। भारत के अलावा जहां-जहां हिंदीभाषी भारतवंशी हैं वहां-वहां हिंदी अपने पूर्ण वजूद में उपस्थित है। पोलिश, नॉर्वेजियन, फिनिश, आइसलैंडिक, चेक, ऑस्ट्रियन आदि से तुलना करें तो भारतीय साहित्य और हिंदी साहित्य किसी से कमतर नहीं है। नोबेल समिति के सदस्य भारतीय साहित्य के नाम पर केवल अंग्रेजी में लिखी रचनाओं को ही जानते हैं। भारतीय साहित्य के प्रतिनिधि के तौर पर विक्रम सेठ, अरुंधति राय, अमिताभ घोष और सलमान रश्दी जैसे लेखकों को ही माना जाता है। शायद नोबेल फाउंडेशन को प्रेमचंद, रेणु, अज्ञेय, मुक्तिबोध, देथा, निर्मल वर्मा आदि के बारे में कोई जानकारी ही नहीं है। टैगोर की रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद न हुआ होता और उनकी रचनाएं यीट्स और एजरा पाउंड जैसे कवियों के समक्ष न पढ़ी गई होतीं तो उन्हें भी नोबेल मिलना मुमकिन न होता।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि नोबेल पुरस्कार मिलने से पहले ही गुरुदेव देश में प्रसिद्धि पा चुके थे। उनकी रचनाओं में कोई विश्वस्तरीय सम्मान प्राप्त करने की पर्याप्त संभावनाएं थीं। बावजूद इसके, नोबेल की दौड़ में उन्हें शामिल करवाने में उनके भतीजे अवनींद्रनाथ टैगोर की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। कलाकार अवनींद्रनाथ लंदन में रहते थे और प्रसिद्ध ब्रिटिश कलाकार रोथेंस्टाइन से उनकी गहरी मित्रता थी। उन्होंने रवींद्रनाथ की भेंट रोथेंस्टाइन से कराई, जिन्होंने अमेरिकी कवि एजरा पाउंड, ब्रिटिश कवि विलियम बटलर यीट्स, कवयित्री सिनक्लैर तथा सी.एफ. एंड्रूज़ आदि की उपस्थिति में टैगोर का कवितापाठ और उस पर साहित्य संगोष्ठी का आयोजन किया। उस संगोष्ठी में सुनाने हेतु टैगोर ने 'गीतांजलि', 'गीतिमाल्य' आदि अपने विभिन्न बांग्ला काव्य-संग्रहों से चुनकर लगभग 103 कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद कर लिया था। इस संग्रह को 'गीतांजलि : सांग्स ऑफरिंग्स' नाम दिया गया था। इसी सभा में यह निश्चय किया गया कि उस संग्रह को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जाए और उसकी भूमिका यीट्स लिखें।

पुरस्कार और राजनीति

भारत में साहित्य के नोबेल पुरस्कार को लेकर हमेशा बहस चलती रही है। आलोचक नामवर सिंह के अनुसार, 'केवल साहित्य के नोबेल पुरस्कार को लेकर ही हो-हल्ला होता है, जबकि विज्ञान, चिकित्सा और अन्य क्षेत्रों में नोबेल नहीं मिलने पर कोई बहस नहीं होती है। आखिर क्यों? वास्तव में शुरू से ही नोबेल पुरस्कार अंतरराष्ट्रीय औपनिवेशिक राजनीति का हिस्सा रहा है। इस देश में ऐसे कई लेखक मौजूद हैं, जिन्हें यदि नोबेल नहीं दिया गया है तो इससे विश्व साहित्य में उनका कद कम नहीं होने वाला है।' हाल में दिवंगत बांग्ला के सुप्रसिद्ध लेखक सुनील गंगोपाध्याय के अनुसार, 'भारतीय भाषाओं में तमाम ऐसे लेखक मौजूद हैं जिनकी रचनाएं किसी भी दृष्टि से नोबेल विजेताओं से कम नहीं हैं। लेकिन अफसोस इस बात का है कि नोबेल हासिल करने के लिए विश्व की राजनीति का हिस्सा होना बेहद जरूरी है। गुरुदेव को भी उनकी बांग्ला कृति के लिए नहीं, बल्कि उनकी रचना के अंग्रेजी संस्करण को नोबेल मिला था।'

चीन के नए नेताओं से मिल रहे हैं नए संकेत

'जर्नी टु द वेस्ट' यानी पश्चिम की ओर यात्रा चीन के चार महान ग्रंथों में एक है। इसमें ह्वेन सांग जैसे चीनी विद्वानों और घुमंतू लोगों की भारत यात्रा का वर्णन है। इस ग्रंथ में ईसा बाद की सदियों के गहरे भारत-चीन रिश्तों की कहानी है, जिससे पता चलता है कि कैसे तब प्राचीन भारतीय ज्ञान को चीनी भाषा में लाकर चीन के लोगों का भारत से परिचय करवाया गया। यही वजह है कि चीनी लोग भारत को हमेशा आदर से देखते रहे हैं। अब यह महज संयोग लग सकता है कि जर्नी टु द वेस्ट की तर्ज पर लुक वेस्ट नाम से चीन के पश्चिम में पड़ने वाले देशों को लेकर उसकी विदेश नीति में भारी बदलाव पर गहन मंथन चल रहा है। यह नीति दस्तावेज यदि चीन के नए नेतृत्व (शी चिन फिंग और ली ख छ्यांग) ने अमल में लाने का फैसला किया तो इससे दोनों देशों के रिश्तों में नई जान पड़ सकती है।

भारी पड़ता टकराव

चीन का नया नेतृत्व बाकी दुनिया के साथ किस तरह के रिश्ते विकसित करेगा, इस पर चीन के विदेश नीति निर्माता काम करने लगे हैं। इस नेतृत्व के सामने जहां घरेलू स्थिरता बनाए रखने की चुनौती है, वहीं अन्य देशों के साथ अपने रिश्ते नये सिरे से निर्धारित करने की जरूरत भी है, क्योंकि चीन पर अब यह आरोप लगने लगा है कि वह बाकी दुनिया के साथ टकराव के रास्ते पर चलने लगा है। हाल में जिस तरह दक्षिण चीन सागर और पूर्व एशिया में चीन ने सागरीय पड़ोसी देशों के साथ टकराव मोल लिया है, उससे चीन की अंतरराष्ट्रीय छवि धूमिल पड़ी है और विदेशी

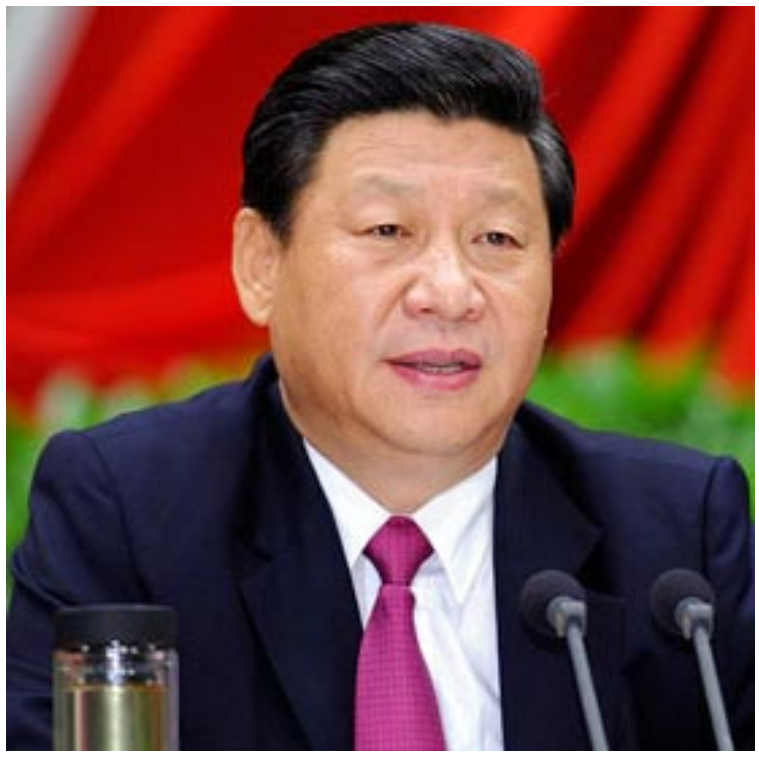

निवेशक चीन का विकल्प तलाशने लगे हैं। इसलिए चीन के नए नेताओं को यह तय करना होगा कि वे अपने सागरीय और जमीनी पड़ोसी देशों के साथ रिश्तों को किस दिशा में ले जाएंगे।

तंग का पैकेज डील

भारत को लेकर चीन ने विगत में नेतृत्व बदलने के साथ ही अपनी नीतियां बदली हैं। इसलिए आगे नीतियां नहीं बदली जाएंगी, यह नहीं कहा जा सकता। आधुनिक चीन के निर्माता तंग श्याओ फिंग कहते थे कि दो हजार साल के भारत-चीन रिश्तों में केवल कुछ सालों के लिये ही मनमुटाव रहा है, जिसका असर इतने लंबे रिश्तों पर नहीं पड़ना चाहिए। अस्सी के दशक की शुरुआत में सत्ता की बागडोर संभालते ही तंग श्याओ फिंग ने भारत के साथ सीमा विवाद के हल के लिये पैकेज डील यानी एकमुश्त समझौते की पेशकश की। इसमें मोटे तौर पर यही प्रस्तावित था कि जो इलाका जिसके पास है, वह अपने पास रखकर सीमा मसले को हमेशा के लिये समाप्त करे। लेकिन तब भारत ने इसे नहीं माना। एक दशक बाद राष्ट्रपति च्यांग च मिन के राज में चीन ने भारत को दी गई यह पेशकश वापस ले ली और अब वह 1962 के बाद अपने अधीन आए इलाके को तो अपने पास रखने की जिद कर ही रहा है, साथ में भारत के हिस्से वाले अरुणाचल प्रदेश की मांग भी कर रहा है। 2005 में दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों मनमोहन सिंह और वन च्या पाओ के बीच हुआ ऐतिहासिक समझौता तंग श्याओ फिंग के पैकेज डील के अनुरूप ही लग रहा था लेकिन अचानक चीन इससे मुकर गया। बहरहाल, चीन के नीति निर्माता अब यह समझने लगे हैं कि भारत से यह इलाका बलात वापस नहीं लिया जा सकता है। शायद इसीलिए चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के एक मुख पत्र क्वांगमिंग डेली ने 18वीं पार्टी कांग्रेस शुरू होने के कुछ दिन पहले ही कहा कि सीमा मसला ही दोनों देशों के रिश्तों को पूरी तरह पारिभाषित नहीं करता, इसलिए इसका असर दोनों देशों के समग्र रिश्तों पर नहीं पड़ना चाहिए। इस मसले का अंतिम हल निकलने के पहले दोनों देशों को मिलकर सीमांत इलाकों में शांति व स्थिरता बनाए रखने के लिए मिल कर काम करना होगा। 2005 के समझौते सहित विश्वास निर्माण के सभी समझौतों का जिक्र करते हुए अखबार ने यह भी लिखा कि एक बार दोनों देशों ने इस इलाके में युद्ध लड़ा, लेकिन उस युद्ध का धुआं अब उड़ चुका है और दोनों देशों को आपसी समृद्धि के लिए सहयोग मजबूत करना होगा। ।

इन रिपोर्टों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि न केवल भारत बल्कि दूसरे देशों के साथ भी रिश्तों को नया आकार देने के लिये चीन का नया नेतृत्व विदेशी मोर्चे पर पूरी तरह एक नई स्लेट पर अपनी नीतियां लिखने को स्वतंत्र होगा। हालांकि चीन की विदेश नीति किसी एक नेता के व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों से नहीं निर्धारित होगी। वहां फैसले अब पॉलित ब्यूरो की बैठकों में आम राय से लिए जाते हैं और नए राष्ट्रपति शी चिन फिंग आम राय से ही चलने वाले नेता माने जाते हैं। फिलहाल चीन के आला अधिकारी कह रहे हैं कि भारत सहित चीन की किसी विदेश नीति में कोई बदलाव नहीं होगा। लेकिन चीन की विदेश नीति सलाहकार समिति के एक प्रभावशाली सदस्य प्रफेसर वांग चीसी ने संकेत दिया है कि चीन अपने विदेशी मोर्चे पर नया नजरिया अपना सकता है।

भारत-पाक संतुलन

प्रफेसर वांग चीसी का नई प्रस्तावित लुक वेस्ट नीति में भी योगदान रहा है। इसके तहत न केवल भारत बल्कि दूसरे देशों के साथ भी रिश्तों को नए सिरे से पारिभाषित किया जा सकता है। पाकिस्तान के साथ सदाबहार दोस्ती वाले रिश्ते को भी संतुलन देने की कोशिश हो सकती है। इस नीति में चीन पाकिस्तान की ओर अपने झुकाव को संतुलित करने पर विचार कर रहा है। पर्यवेक्षकों का मानना है कि अमेरिका द्वारा अपनी एशिया प्रशांत नीति में बदलाव लाते हुए इसमें भारत को केंद्र-बिंदु बनाने की अनौपचारिक रणनीति तय की गई है, जिससे चीन चिंतित है। चीन इसे अपनी घेराबंदी की कोशिश मान रहा है, हालांकि अपने राष्ट्रीय हितों की मजबूरी में ही भारत ऐसा करना चाहेगा। ऐसे में चीन एक ऐसी रणनीति अपना सकता है, जिससे भारत को अमेरिकी खेमे में जाने से रोका जा सके।